हाथियों को बचाने की कोशिश

सरकार और निजी क्षेत्र के पारस्परिक सहयोग से छत्तीसगढ़ में हाथियों को बचाने की कोशिश की जा रही है। वन और वन्य जीवन की रक्षा के लिए होने वाले सरकारी प्रयास अब तक भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ते रहे हैं। शेर और बाघ को बचाने वाले वन्य जीव अभयारण्यों और राष्ट्रीय पार्कों में शेर और बाघों की संख्या में लगातार कमी देखने को मिली है। ऐसे में हाथियों को बचाने की छत्तीसगढ़ की मंशा रंग लाए इसकी शुभकामना ही की जा सकती है।

वन्य जीवन की रक्षा के लिए सरकार अब तक जंगल के खास हिस्से को सुरक्षित घोषित करने की नीति पर चलती रही है। सरकार यह सोचती है कि वनवासी आदिवासी जंगल के जानवरों को मारने के लिए दोषी हैं। इसलिए सरकार जंगल के खास हिस्से को 'वन्य जीव अभयारण्य' या 'राष्ट्रीय पार्क' घोषित कर देती है। इसके तहत घोषित क्षेत्र में मानवीय गतिविधि बंद कर दी जाती है और स्थानीय निवासियों को सुरक्षित क्षेत्र से बाहर चले जाने का फरमान जारी कर दिया जाता है। एक तरह से कहा जाए तो आदिवासियों या स्थानीय निवासियों से उनका जंगल छीन लिया जाता है और वन क्षेत्र की सुरक्षा के लिए एक वन रक्षक नियुक्त कर दिया जाता है। पर्यावरण पर काम करने वाले विशेषज्ञों के बीच सरकार की इस नीति को 'गन्स एवं गार्ड पॉलिसी' कहा जाता है। यानी, इस नीति में सरकारी नुमाइंदे व अधिकारी बंदूक के बल पर जंगलों में चलने वाले शिकार को रोकेंगे।

सरकार इस नीति पर पिछले 50 या उससे भी अधिक सालों से चल रही है। फिर भी जानवरों की संख्या चिंताजनक स्तर पर पहुँच गयी है। अपनी सख्त नीति ओर भारी भरकम खर्च करने के बाद भी सरकार वन्य जीवों की रक्षा करने में क्यों असफल रही है? क्या सरकार की नीतियों का सख्ती से पालन नहीं हुआ? या फिर नीति ही गलत थी? सत्य क्या है?

देखा गया है कि वन की सुरक्षा में लगे अधिकारी थोड़े से पैसों पर बिक जाते हैं और विशिष्ट लोगों को शिकार करने देते हैं। क्यों? क्योंकि जानवर बचें या मरें इससे उनकी कोई व्यक्तिगत क्षति नहीं होती। दूसरी ओर जंगलों के आसपास बसे स्थानीय लोगों को चूँकि जंगल के चप्पे-चप्पे का सही ज्ञान होता है, इसलिए शिकार में उनकी भी मदद ली जाती है। चूँकि सरकारी फरमान के बाद जंगल और जंगली जानवरों पर उनका कोई अधिकार नहीं रह जाता है, इसलिए जंगल और जानवरों की होने वाली क्षति उनकी भी निजी क्षति नहीं है। उलटे जितना लाभ निकल जाए, उतना अच्छा। यानी, भागती भूत की लंगोटी सही। भारत में वन और वन्य जीवन को राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर उसपर निर्भर समुदायों को वहाँ से खदेड़ दिया गया है। इसलिए एक ओर वनवासी समुदाय को उसकी सुरक्षा से कोई मतलब नहीं, तो दूसरी ओर जंगलों में नियुक्त अधिकारियों को भी उस संसाधन से कोई लगाव नहीं होता, क्योंकि उसका जीवन जंगलों पर नहीं बल्कि सरकारी वेतन पर निर्भर होता है। एक छोटा उदाहरण गौरतलब है। दुनियाभर में रोजाना लाखों करोड़ों की संख्या में मुर्गे और बकरी काटी जाती रही हैं। पर आज तक उनकी प्रजाति खतरे में नहीं पड़ी। दूसरी ओर सरकार के वन्य जीव संरक्षण कार्यक्रम पर इतना भारी खर्च के बावजूद जानवरों की आबादी घटती जा रही है। क्या इस उदाहरण से हमें कोई सीख मिलती है?

मुर्गे और बकरी की आबादी नहीं घटने के क्या कारण हो सकते हैं? क्योंकि उससे उसे पालने वाले की जीविका जुड़ी हुई है। मुर्गा पालने वाला भविष्य में अधिक फायदा को ध्यान में रखते हुए वह इतना अच्छा प्रबंधन करता है कि भविष्य में उसके पास अधिक मुर्गे हो जाएं, ताकि कल वह अधिक मुर्गे बेचकर अधिक पैसा कमा पाए। वस्तुत: मुर्गों के इस प्रतिबंध मुक्त कटाई के कारोबार में मुर्गों की आबादी बढ़ती ही जा रही है।

क्या हम वन्य जीवों को भी वनों पर निर्भर समुदायों से इसी प्रकार नहीं जोड़ सकते? जिंबाबवे में हाथियों को बचाने के लिए इसी तरह के फॉर्मूले को अपनाया गया। जब सारा विश्व हाथियों को बचाने के लिए सरकारी संरक्षण के रास्ते पर चल रहा था। तब जिंबाबवे सरकार ने जंगलों को वनवासी समुदायों की विभिन्न परिषदों के हवाले कर दिया। और उन्हें इसका दोहन कर भरपूर लाभ कमाने की इजाजत दे दी। हाथियों के शिकार के क्षेत्र में जबरदस्त लाभ की संभावना को देखते हुए, इन वनवासी परिषदों ने दुनिया भर के अधिकारियों को अपने वनों में शिकार करने हेतु आकर्षित किया। दूसरी ओर शिकार के प्रत्येक घंटे के लिए उन्होंने एक निश्चित कीमत तय कर दी। नतीजा यह हुआ कि हाथियों के शिकार से इन वनवासियों को आर्थिक लाभ होने लगा। परिणामस्वरूप सारा खेल मुर्गे मुर्गियों जैसा सहज हो गया। यानी, जब तक वन में हाथी रहेंगे, तब तक उन्हें शिकार से आर्थिक लाभ होता रहेगा। और वन में जितने हाथी रहेंगे, शिकार से उतना अधिक लाभ होगा। इस प्रकार एक ओर जहाँ शिकारियों को शिकार की इजाजत देकर वे भारी मुनाफा कमाते थे, वहीं दूसरी ओर भविष्य के लाभ को ध्यान में रखते हुए वे स्वयं हाथियों की संख्या बढ़ाने के विभिन्न उपाय भी कर रहे थे। जैसे युवा और छोटे हाथियों को मारने पर शिकारियों पर भारी जुर्माना भी लगाया जाने लगा। नतीजा आश्चर्यजनक रहा। जिंबाबवे में हाथियों की संख्या बढ़ने लगी। जब सारी दूनिया में संरक्षण कार्यक्रम पर भारी भरकम खर्च करने के बावजूद हाथियों की संख्या घटती ही जा रही थी, उसी समय जिंबाबवे में जंगलों और जानवरों को वनवासी समुदाय के हवाले करने के बावजूद हाथियों की संख्या तेजी से बढ़ रही थी।

कारण सिर्फ एक था। और वह यह था कि जिंबाबवे की व्यवस्था में हाथियों की सुरक्षा में वनवासियों का ही लाभ था। इसलिए वे एक सजग प्रहरी की भांति वन संपदाओं को अपनी संपत्ति समझ कर उसकी रक्षा कर रहे थे। जबकि हमारे यहाँ की वनसंरक्षण व्यवस्था में जंगल को राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर दिया गया है। वनवासियों को उनके पारंपरिक निवास स्थानों से यानी, जगलों से खदेड़ कर बाहर किया जा रहा है।

इसलिए वनवासियों में जंगलों को शिकारियों से बचाने की कोई स्वाभाविक प्रेरणा नहीं है। बल्कि वे भागते भागते जो कुछ भी हाथ लग जाए, उसे निकाल लेना चाहते हैं। दूसरी ओर यह व्यवस्था वन अधिकारियों को भी अवैध शिकार तथा अन्य अवैध गतिविधियों द्वारा अधिक से अधिक लाभ निकालने की प्रेरणा देती है। क्योंकि इसकी क्षति से उनका कुछ भी नुकसान नहीं होता। भारत के प्रधानमंत्री हर जंगल में जाकर शेर की संख्या नहीं गिन सकते। उन्हें अंतत: इन वन अधिकारियों की दी हुई सूचना पर ही भरोसा करना होता है। नतीजा वनों में इन तथाकथित वनरक्षकों का एकछत्र निरंकुश राज चलता है। और ये वनरक्षक जंगल के सबसे खतरनाक भक्षक हो जाते हैं। ■